शोध मंथन Vol. XII No.I Jan.-March 2021 ISSN: (P)0976-5255 (e)2454-339X
Impact Factor 7.760 (SJIF)

भारतीय दर्शनों में कर्म का स्वरूप/कर्मसिद्धान्त

डॉ0 रूचिका जैन
एसि0 प्रोफे0, संस्कृत विभाग,
दि0 जैन डिग्री कॉलिज, बडौत, बागपत, उ0प्र0
Email:aagam286jain@gmail.com

प्राप्तिः 24.02.2021
स्वीकृतः 15.03.2021

सारांश

मोह राग द्वेष रूप भाव कर्म होता है। इन कर्मो का आत्मा से अनादिकाल से संबंध है। यहीं कारण है कि कर्म व्यवस्था भी अनादि मानी गई है। सिद्धान्तविद् आचार्यों के द्वारा कर्मसिद्धान्त पर जो विचार किया गया है, उसी को सविस्तार अधोलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा रहा है–

1ण कर्मसिद्धान्त

- *जैन दर्शन में कर्मसिद्धान्त,*
- *बौद्ध दर्शन में कर्मसिद्धान्त,*
- *वैदिक दर्शन में कर्मसिद्धान्त।*

कर्मवाद के अभ्यन्तर पक्ष को देखा जाए कि अच्छे–बुरे कर्म का फल भारतीय दर्शन की वैदिक, जैन एवं बौद्ध तीनों विचारधाराएं स्वीकार करती है। उनके बाह्य पक्ष में अन्तर है। वैदिक परम्परा में जहाँ ईश्वर एवं आत्मा इसमें प्रमुख भूमिका अदा करते हैं, वहीं बौद्ध धर्म में बिना ईश्वर एवं आत्मा के मात्र नामरूप का सहारा लिया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी दार्शनिक परम्पराएं समाज में व्यवस्था बनाए रखने एवं व्यक्ति के विकास में कर्मवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करती है।

प्रत्येक देश व धर्म में कर्म के महत्व की प्रतिष्ठा मिलती है। कर्म की मानव–जीवन में अनिवार्यता निहित है। 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्' के अनुसार जीवन में कर्म का अविच्छेद संबंध है।

प्रस्तावना

प्रत्येक देश/धर्म में कर्म की प्रतिष्ठा मिलती है कर्म में मानव जीवन की अनिवार्यता निहित है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्'** के अनुसार जीवन में कर्म का अविच्छेद संबंध है।

शुभ और अशुभ के रूप में 'द्विधा कर्म का वर्गीकरण, कर्म के सामाजिक मूल्य को प्रकट करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसके कर्म सिद्धान्त की प्रतिष्ठा उसी समय हो गयी थी जिस समय उसने जीवन की पुकार की थी, कर्म सिद्धान्त व्यक्ति के आचरण का नियमन

करता है। इस आचरणवाद ने अनेक धर्माचार्यों की वाणी का प्रश्रय पाकर अनेक दिशाओं में अभ्युदय प्राप्त किया। आचरण की व्याख्या कर्म के माध्यम से ही की जा सकती है। आचरण अन्तर और बाहर दोनों की कुंजी है और कर्म उसका केन्द्र है।

मानव के लिए कर्म सिद्धान्त की उपयोगिता अपरिहार्य है। मनसा, वाचा, कर्मणा वह जो कुछ भी करता है वह सब कर्म है। जैसे–जैसे जीव कर्म करता है वैसे ही स्वभाव को लेकर कर्म उसके साथ बंधते हैं और कुछ काल बाद परिपक्व दशा को प्राप्त होकर उदय में आते हैं यही उनका फलदान कहा जाता है।

सभी भारतीयदर्शनों की तरह जैनदर्शन भी इस जगत के वैचित्रय की व्याख्या कर्म–सिद्धान्त के आधार पर करता है। आचारांग में स्पष्ट कहा गया है – 'कम्मुणा उवाधि जायति' अर्थात् कर्म से उपाधि (दुःख) का जन्म होता है। इसके अतिरिक्त **'कम्मं च जाइ मरणस्स मूलं'** आदि उल्लेख यही दर्शाते हैं कि कर्म ही सुख–दुःख, जन्म–मरण का मूल है।

वैदिक परम्परा की प्रारम्भिक अवस्था में उपनिषद् काल तक कोई ठोस कर्म सिद्धान्त नहीं बन पाया था यद्यपि वैदिक साहित्य में 'ऋत्' के रूप में उसका अस्पष्ट निर्देश अवश्य उपलब्ध है। कर्म कारण है, ऐसा वाद भी उपनिषदों में सर्वसम्मत हो यह भी नही कहा जा सकता। वैदिक साहित्य में 'ऋत्' के नियम को स्वीकार किया गया है लेकिन उसकी विस्तृत व्याख्या उसमें उपलब्ध नही है। उस समय के वैचारकों ने वैचित्र्यमय सृष्टि एवं वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण के रूप में विभिन्न धाराओं का प्रतिपादन किया जो निम्न प्रकार है –

1. कालवाद

यह सिद्धान्त सषष्टि वैचित्र्य, वैयक्तिक भिन्नताओं, व्यक्ति की सुख–दुःखात्मक अनुभूतियों का कारण 'काल' को मानता है। अथर्ववेद में तीन सूक्तों में काल पर विशेष चर्चा की गयी है जिसमें बताया गया है कि काल ने पृथ्वी को उत्पन्न किया, काल के आधार पर ही सूर्य तपता है और काल के आधार पर ही समस्त जीव रहते हैं। काल ही ईश्वर है। महाभारत में भी उल्लेख मिलता है कि काल ही समस्त प्राणियों का सष्जन और संहार करता है। गोम्मटसार में काल को सबकी उत्पत्ति, विनाश और सोते हुए प्राणियों को जगाने का कारण बताया है। कालवाद के अनुसार जिसका जो समय या काल होता है, उसी समय वह घटित होता है। समय आने पर ही अमुक वस्तु पैदा होती है और समय पूरा होते ही नष्ट हो जाती हैं बिना काल के परिपक्व हुये स्वभाव, पुरूषार्थ, नियति आदि भी कुछ नहीं कर सकते। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि कई बार प्रयत्न करने पर भी कार्य सिद्धि नही होती और उसका उचित समय आने पर स्वयमेव हो जाती है।

2. स्वभाववाद

स्वभाववाद के अनुसार संसार में जो कुछ घटित होगा या होता है, अथवा हुआ है, उसका आधार वस्तुओं का अपना–अपना स्वभाव है। इसमें काल, नियति, कर्म आदि क्या कर सकते हैं? आम की गुठली में ही आम का वृक्ष बनने का स्वभाव है, नीम की निम्बोली में नहीं। चन्द्रमा शीतल है – क्या काल या नियति इसे ठण्डा या गर्म कर सकते हैं? अतः जिसका जैसा

स्वभाव होता है वैसा ही उसका परिणाम होता है। हवा का चलना, पर्वत का स्थिर रहना, नदी का बहना उनके स्वभाव के कारण हैं? बबूल आदि के कांटों को कौन नुकीला करता है?, मयूर, मष्ग आदि को कौन चित्रित करता है? इन सबका एकमात्र स्वभाव है। अतः समस्त घटना चक्र का कारण स्वभाव ही है। कालादि के मौजूद रहने पर भी स्वभाव के बिना अभीष्ट कार्य नही होता। सांख्यकारिका पर माठरवृत्ति एवं न्यायकुसुमांजलि आदि ग्रन्थों में स्वभाववाद का सयुक्तिक निराकरण किया गया है।

3. यदृच्छावाद

यदृच्छावाद के अनुसार किसी भी घटना का कोई नियत कारण नही होता, ये अहेतुक और अकस्मात् होती हैं। समस्त घटनाएं मात्र संयोग का परिणाम है। यह वाद हेतु के स्थान पर संयोग को प्रमुखता देता है। इसमें कारण–कार्याभाव आदि के विषय में कोई भी विचार नही किया जाता। यदृच्छावाद को सरल शब्दों में अकारणवाद, अनिमित्तवाद, अहेतुवाद, अकस्मातवाद या अटकलपच्चूवाद भी कहते है। कुछ लोग स्वभावाद और यदृच्छावाद को एक ही मानते हैं; किन्तु दोनों में मौलिक अन्तर यह है कि स्वभावादी स्वभाव को कारण रूप मानते हैं जबकि यदृच्छावादी कारण की सत्ता से ही इनकार करते है।

4. नियतिवाद

नियतिवाद का अर्थ है भवितव्यता या होनहार। नियति के इस अर्थ के अनुसार जिसका जिस समय में जहाँ जो होना होता है, वह होता ही है, जो नहीं होना होता है, वह उस समय नही होता। मनुष्यों की नियति के प्रबल आश्रय से जो भी शुभ या अशुभ प्राप्त होना है, वह अवश्य ही प्राप्त होगा। प्राणी कितना भी प्रयत्न कर ले परन्तु जो नहीं होना होता है, वह नहीं होता। जो भवितव्य है अर्थात् होना है उसे कोई नहीं मिटा सकता। अतः नियतिवाद के अनुसार जो होना होता है, वह अवश्य होता है, उसमें मनुष्य की धारणा, योजना या कर्तव्य क्षमता की गणना काम नहीं आती, न ही उसमें काल, स्वभाव या पुरूषार्थ का कोई अवकाश है।

जगत के सभी कार्य नियति के अधीन होते है। कोयल काली क्यों, खरगोश सफेद क्यों, सूर्य का पूर्व में उगना इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि विश्व प्रकृति के अटल नियम के अनुसार जो नियत है वही होता है, अन्यथा नहीं। इस वाद का वर्णन सूत्रकृतांग व्याख्याप्रज्ञप्ति, उपसाकदशांग आदि जैनागमों में हुआ है।

नियतिवाद का एक आध्यात्मिक रूप वर्तमान में आविष्कृत हुआ है। इस सिद्धान्त का नाम क्रमबद्ध पर्याय है। इसके अनुसार प्रत्येक द्रव्य की प्रति समय की पर्याय सुनिश्चित है। जिस समय जो पर्याय होती है, वह अपने नियत स्वभाव के कारण होती है, उसमें प्रयत्न निरर्थक है। उपादान शक्ति से ही वह पर्याय प्रकट हो जाती है। निमित्त वहाँ स्वयमेव उपस्थित हो जाता है, उसको मिलाने की आवश्यकता नहीं। क्रमबद्ध पर्याय का यह मत उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इसमें पुरूषार्थ और शुभकर्मों का कोई अर्थ ही नहीं रहता। भगवान महावीर की दृष्टि में नियतिवाद, कर्मवाद और पुरूषार्थवाद पर कुठाराघात करनेवाला है।

5. महाभूतवाद

महाभूतवाद के अनुसार समग्र अस्तित्व के मूल में पंचमहाभूतों की सत्ता रही है। संसार उनके वैविध्यमय संयोगों का परिणाम है। वह सृष्टि से सभी पदार्थों की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि चार भूतों के विशिष्ट संयोग से मानता है, जिन्हे जैन कर्मवादी आत्मतत्व या चेतन तत्व कहते हैं। वह इन्हीं चार भूतों की ही विशिष्ट परिणति है जो विशिष्ट प्रकार की परिस्थिति में उत्पन्न होती है और उन परिस्थितियों की अनुपस्थिति में वहीं स्वतः बिखर जाती है। इसकी प्रक्रिया के विषय में भूतचैतन्यवादी बताते हैं कि जिस प्रकार महुआ, गुड आदि के विशेष सम्मिश्रण से शराब बन जाती है, चूना+कत्था+सुपारी तथा पान के संयोग से लाल रंग उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार भूतचतुष्टय के संयोग से शरीर या सम्बद्ध चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है। भूतवादी यह मानते है कि आत्मा या पुनर्जन्म कुछ नहीं है। जीवन की धारा गर्भ से लेकर मरणपर्यन्त चलती रहती हैं। मरणकाल में शरीर यंत्र में विकषति आ जाने से जीवन शक्ति समाप्त हो जाती है। इसके बाद शरीर के जल जाने पर न तो कहीं आना है, न कहीं जाना है। सूत्रकष्तांग में तज्जीवतच्चीरवाद के रूप में इस विचारधारा का वर्णन मिलता है।

डार्विन का विकासवाद भी इन्हीं भूतचैतन्यवादियों के सिद्धान्त से मिलता जुलता सिद्धान्त है या उसी का परिष्कष्त रूप है। इसके अनुसार चेतन तत्व का विकास (जड और मूर्तिक) तत्वों से ही माना जाता है। इस भौतिकवाद की मान्यता है की अमीबा, घोंघा आदि बिना रीढ़ के प्राणियों से रीढ़दार पशुओं और मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। जड़ तत्वों से भिन्न कोई चेतनतत्व (आत्मतत्व) नहीं है। जड़तत्वों के विकास और ह्रास के साथ ही चैतन्यतत्व का विकास और ह्रास हो जाता है, किन्तु इस बात का निराकरण इसी तथ्य से हो जाता है कि जड और मूर्तिक भूतों से चेतन और अमूर्तिक आत्मा की उत्पत्ति किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।

भूतवाद कर्मवाद के सिद्धान्त से सर्वथा विपरीत है। इस भौतिक शरीर–यन्त्र में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, जिजीविषा, संकल्प वृत्ति, भावना, अहिंसादि के आचरण की वृत्ति–'दया' क्षमा, आदि कोमल भावनाओं का उद्भव, कार्य–कारण का निश्चय इत्यादि बातें जो पाई जाती है, वे अकस्मात कैसे आ जाती हैं? परलोक या अन्यलोक मानने पर तो संसार में अव्यवस्था और अराजकता हो जायेगी। फिर कौन अपने पूर्वकृत कर्मों का क्षय करने तथा अहिंसा, विश्व–मैत्री, क्षमा, समता आदि की साधना करेगा? अतः भूतवाद का सिद्धान्त युक्तियुक्त नहीं है।

6. पुरूषवाद

पुरूषवाद के अनुसार पुरूष ही इस जगत् का कर्ता, धर्ता और हर्ता है। प्रलयकाल तक उस पुरूष की ज्ञानादि शक्तियों का लोप नहीं होता। प्रमेयकमलमार्तण्ड में इसे समझाते हुए कहा गया है कि जैसे मकड़ी जाले के लिए, चन्द्रकांता मणि जल के लिए एवं वटवृक्ष प्ररोहों के लिए कारण होता है उसी प्रकार पुरूष भी जगत् के समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और लय का कारण है। पुरूषवाद में दो विचारधाराएं निहित हैं – ब्रह्मवाद और ईश्वरवाद।

ब्रह्मवाद

ब्रह्मवाद में ब्रह्म ही जगत् के चेतन–अचेतन, मूर्त–अमूर्त आदि समस्त पदार्थों का उपादान

कारण होता है। तर्क के कसौटी पर देखा जाय तो एक ही ब्रह्मतत्व विभिन्न जड़–चेतन पदार्थों के परिणमन में उपादान कारण कैसे बन सकता है, इसका कोई युक्तियुक्त समाधान नही मिल पाता। ब्रह्मवाद में जगत् की परिकल्पना के मूल में माया को माना जाता है और वहाँ मायोपहित ब्रह्म ही जगत् का कारण है। ब्रह्मवाद एकात्मवाद भी मानता है किन्तु आत्मा को यदि एक मान लिया जाय तो जगत् में अनन्त–अनन्त जीव जो पृथक्–पृथक् पर्यायें धारण करते हैं, विभिन्न अनुपात में सुख–दुःख का परिभोग करते हैं, उनका क्या होगा? अतः यह मत युक्तियुक्त नहीं है।

ईश्वरवाद

पुरूषवाद का दूसरा रूप ईश्वरवाद है। अर्थात् इस विश्व में व्याप्त समस्त विचित्रताओं का कर्ता ईश्वर है। उसकी इच्छा ही जगत् की सृष्टि में कारण है। ईश्वर एक, अद्वितीय, सर्वव्यापी, स्वतन्त्र, सर्वज्ञ और नित्य है। ईश्वरवाद के पूर्व पक्ष को प्रस्तुत करते हुए गोम्मटसार में कहा गया है कि आत्मा अनाथ है, उसका सुख–दुःख, स्वर्ग–नरक–गमन आदि सब ईश्वर के हाथ में है। ईश्वर कर्तश्त्व के संबंध में युक्ति दी जाती है कि जड़–चेतन रूप जगत् का कोई न कोई पुरूष विशेष कर्ता है क्योंकि पृथ्वी, वृक्ष आदि पदार्थ कार्य हैं और कार्य होने से किसी न किसी बुद्धिमान कर्ता द्वारा निर्मित है। जैसे–घट आदि का कर्ता कुम्भकार। वह बुद्धिमान कर्ता ही ईश्वर है।

7. क्रियावाद

यद्यपि क्रियावाद कर्मवाद का समर्थक है किन्तु यहाँ क्रियावाद का अर्थ सक्रियावाद है। **'ज्ञानाक्रियाभ्यां मोक्षः'** – इस सूत्र के अनुसार वहाँ क्रियावाद सम्यक्चारित्र एवं सम्यक्तप के आचरण में रूढ है। किन्तु यहाँ क्रियावाद अज्ञानपूर्वक क्रिया तथा अन्धविश्वासपूर्वक प्रवृत्ति या अज्ञानपूर्वक तप करने के अर्थ में है। वर्तमान भौतिक विज्ञानवादी भी इस अन्तिम लक्ष्य विहीन क्रियावाद के अर्न्तगत आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग भी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं जो एकान्तरूप से अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष, अभिनिवेश, मिथ्याग्रह आदि से युक्त होकर अहर्निश श्रम करने की प्रेरणा देते हैं।

8. प्रकृतिवाद

सांख्य दर्शन के अनुसार सत्व, रज, तम इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से ही समग्र जगत् का विकास और ह्रास होता है। समस्त प्राणियों के सुख–दुःख, सम्पन्नता–विपन्नता, इष्टवियोग–अनिष्ट संयोग का कारण भी वह प्रकृति ही है। यह वाद भी कर्म सिद्धान्त के प्रतिकूल है क्योंकि प्रकृति अपने आप में जड़ है, वह अपने हिताहित को नहीं समझती। वह अच्छा या बुरा कार्य या आचरण के लिए आत्मा के ही अधीन है।

9. अक्रियावाद

बौद्ध पिटक में तथागत बुद्ध के युग के छः दार्शनिकों का तथा उनके मत का वर्णन किया गया है। उनमें अक्रियावाद भी एक है। त्रिपिटक में अक्रियावादी पूरणकश्यप के मत का वर्णन करते हुए कहा गया है कि–'किसी ने कुछ भी किया हो, अथवा कराया हो, त्रास दिया हो अथवा दिलवाया हो, झूठ बोला हो तो भी उसे पाप नहीं लगता। यदि कोई व्यक्ति तीक्ष्ण धार वाले चक्र

से पृथ्वी पर मांस का ढेर लगा दे तो भी इसमें लेशमात्र भी पाप नहीं है। दान, धर्म, संयम, सत्यभाषण आदि से कुछ भी पुण्य नहीं होता।' सूत्रकृतांग में कहा गया है कि आत्मा स्वयं कोई क्रिया नहीं करता और न दूसरे से कराता है तथा आत्मा समस्त (कोई भी) क्रिया करने वाला नहीं है। इस प्रकार आत्मा अकारक है। यह सिद्धान्त कर्म–सिद्धान्त के प्रतिकूल है और पुण्य–पाप का समूल उच्छेद करने वाला है।

10. अज्ञानवाद

अज्ञानवादियों का कहना है कि अज्ञान ही श्रेयस्कर है। ज्ञानवादी ज्ञान के अंहकार के कारण उल्टे सीधे तर्क करने लगता है। ज्ञान होने पर व्यक्ति एक पर राग करेगा एक पर द्वेष। इसलिए 'सबके भले मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगत् गति'। जैनागमों में अज्ञानवादियों के संबंध में कहा गया है कि ये अज्ञानवादी तर्क कुशल होते हैं। इनकी यह भी मान्यता है कि सभी वस्तुओं का ज्ञान समान नहीं है। अतः अज्ञानवाद ही श्रेयष्कर है।

11. प्रच्छन्न नियतिवाद

बौद्ध पिटक में पकुधकच्चायन के वाद का उल्लेख है जिससे प्रच्छन्न नियतिवाद की ही प्रतीति होती है। इनके अनुसार सात पदार्थ/तत्व ऐसे हैं जिनका न तो निर्माण किया गया, न कराया गया। ये सात तत्व हैं – पष्थ्वीकाय, अपकाय तेजस्काय, वायुकाय, सुख, दुःख और जीव। इनका नाश करने वाला, इनको सुनने वाला, जानने वाला कोई भी नहीं है। ये मानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति किसी तीक्ष्ण वस्तु से किसी के सर का भेदन करता है तो वह उसके जीवन का हरण नहीं करता बल्कि इन सात पदार्थों के अन्तरान्तल में उनका प्रवेश कराता है। पकुध का यह प्रच्छन्न नियतिवाद कर्मवाद का कट्टर विरोधी है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आचारंग– संपा0 मधुकरमुनि, आगमप्रकाशनसमिति, व्यावर, 1980, 1/3/110 पृ0 **92**।
2 अथर्ववेद– 19/53/1,2,3,4।
3 क. सूत्रकृतांगटीका 1/1/1। ख. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) 882, ग. शास्त्रवार्तासमुच्चय 2/61–64।
4 सूत्रकृतांग– 2/1/12।
5 व्याख्याप्रज्ञप्ति–शतक–15।
6 उपासकदशांग– अध्याय–6–7।
7 सूत्रकृतांग–2/1/9।
8 प्रमेयकमलमार्तण्ड–भाग–1, अनूवादिका–आर्यिकाजिनमतीमाताजी, वीरज्ञानोदयग्रंथमाला, दि0 जैन
9 त्रिलाक शोध संस्थान, हस्तिनापुर 1972 (ब्रह्माद्वैतवाद) पृ0 **185**।
10 गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) – 880।
11 बुद्धचरित– 170।
12 सुत्रकृतांग–1/1/13।

13 क बुद्धचरित पृ0 **778,**

14 ख न्यायावतारवार्ति (प्रस्तावना), पं. दलसुख मालवणिया, पृ0 389।

15 गसूत्रकृतांग–1/21/2।